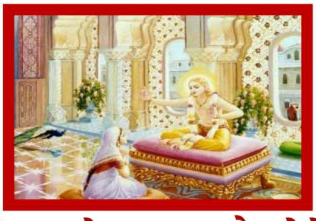
श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

कपिल गीता अध्याय(3.32)



वर्णन करने सांख्य योग का, और देने को ज्ञान ।
गुरु रूप में कपिल मुनि थे, देवहूति शिष्य समान।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
तृतीयं स्कंधः
॥ अथ द्वात्रिं(म्)शोऽध्यायः ॥

कपिल उवाच
अथ यो गृहमेधीयान् ,धर्मानेवावसन् गृहे ।
काममर्थं(ञ्) च धर्मान् स्वान् , दोग्धि भूयः(फ्) पिपर्ति तान् ॥ 1॥

स चापि भगवद्धर्मात्- काममूढः(फ्) पराङ्मुखः ।
यजते क्रतुभिर्देवान्, पितॄं(म्)श्च श्रद्धयान्वितः ॥ 2॥

कपिलदेवजी कहते हैं— माताजी! जो पुरुष घरमें रह कर सकामभावसे गृहस्थके धर्मोंका पालन करता है और उनके फलस्वरूप अर्थ एवं कामका उपभोग करके फिर उन्हींका अनुष्ठान करता रहता है, वह तरह-तरहकी

कामनाओंसे मोहित रहनेके कारण भगवद्धर्मोसे विमुख हो जाता है और यज्ञोंद्वारा श्रद्धापूर्वक देवता तथा पितरोंकी ही आराधना करता रहता है ।

तच्छ्रद्धयाक्रान्तमतिः(फ्), पितृदेवव्रतः(फ्) पुमान् ।

गत्वा चान्द्रमसं(लँ) लोकं(म्), सोमपाः(फ्) पुनरेष्यति ॥ 3॥

उसकी बुद्धि उसी प्रकारकी श्रद्धासे युक्त रहती है, देवता और पितर ही उसके उपास्य रहते हैं; अतः वह चन्द्रलोकमें जाकर उनके साथ सोमपान करता है और फिर पुण्य क्षीण होनेपर इसी लोकमें लौट आता है ।

यदा चाहीन्द्रशय्यायां(म्), शेतेऽनन्तासनो हरिः ।

तदा लोका लयं(यँ) यान्ति, त एते गृहमेधिनाम् ॥ 4॥

जिस समय प्रलयकालमें शेषशायी भगवान् शेषशय्यापर शयन करते हैं, उस समय सकाम गृहस्थाश्रमियोंको प्राप्त होनेवाले ये सब लोक भी लीन हो जाते हैं ।

ये स्वधर्मान्न दुह्यन्ति, धीराः(ख्) कामार्थहेतवे ।

निः(स्)सङ्गा न्यस्तकर्माणः(फ्), प्रशान्ताः(श्) शुद्धचेतसः ॥ 5॥

निवृत्तिधर्मनिरता, निर्ममा निरहङ्कृताः ।

स्वधर्माख्येन सत्त्वेन, परिशुद्धेन चेतसा ॥ 6॥

जो विवेकी पुरुष अपने धर्मोंका अर्थ और भोग- विलासके लिये उपयोग नहीं करते, बल्कि भगवान् की प्रसन्नताके लिये ही उनका पालन करते हैं—वे अनासक्त, प्रशान्त, शुद्धचित्त, निवृत्तिधर्मपरायण, ममतारहित और अहङ्कारशून्य पुरुष स्वधर्मपालनरूप सत्त्वगुणके द्वारा सर्वथा शुद्धचित्त हो जाते हैं ।

सूर्यद्वारेण ते यान्ति, पुरुषं(वँ) विश्वतोमुखम् ।

परावरेशं(म्) प्रकृति-मस्योत्पत्त्यन्तभावनम् ॥ 7॥

वे अन्तमें सूर्यमार्ग (अर्चिमार्ग या देवयान) के द्वारा सर्वव्यापी पूर्णपुरुष श्रीहरिको ही प्राप्त होते हैं—जो कार्य-कारणरूप जगत् के नियन्ता, संसारके उपादान-कारण और उसकी उत्पत्ति, पालन एवं संहार करनेवाले हैं ।

द्विपरार्द्धावसाने यः(फ्), प्रलयो ब्रह्मणस्तु ते ।

तावदध्यासते लोकं(म्), परस्य परचिन्तकाः ॥ 8॥

जो लोग परमात्मदृष्टिसे हिरण्यगर्भकी उपासना करते हैं, वे दो परार्द्धमें होनेवाले ब्रह्माजीके प्रलयपर्यन्त उनके सत्यलोकमें ही रहते हैं ।

क्ष्माम्भोऽनलानिलवियन्मन इन्द्रियार्थ-

भूतादिभिः(फ्) परिवृतं(म्) प्रतिसञ्जिहीर्षुः ।

अव्याकृतं(वँ) विशति यर्हि गुणत्रयात्मा,

कालं(म्) पराख्यमनुभूय परः(स्) स्वयम्भूः ॥ 9॥

एवं(म्) परेत्य भगवन्तमनुप्रविष्टा,
ये योगिनो जितमरुन्मनसो विरागाः ।
तेनैव साकममृतं(म्) पुरुषं(म्) पुराणं(म्),
ब्रह्म प्रधानमुपयान्त्यगताभिमानाः ॥ 10॥

जिस समय देवतादिसे श्रेष्ठब्रह्माजी अपने द्विपरार्द्धकालके अधिकारको भोगकर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, इन्द्रिय, उनके विषय (शब्दादि) और अहङ्कारादिके सहित सम्पूर्ण विश्वका संहार करनेकी इच्छासे त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके साथ एकरूप होकर निर्विशेष परमात्मामें लीन हो जाते हैं, उस समय प्राण और मनको जीते हुए वे विरक्त योगिगण भी देह त्यागकर उन भगवान् ब्रह्माजीमें ही प्रवेश करते हैं और फिर उन्हींके साथ परमानन्दस्वरूप पुराणपुरुष परब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। इससे पहले वे भगवान् में लीन नहीं हुए; क्योंकि अबतक उनमें अहङ्कार शेष था ।

अथ तं(म्) सर्वभूतानां(म्), हृत्पद्मेषु कृतालयम् ।
श्रुतानुभावं(म्) शरणं(वँ), व्रज भावेन भामिनि ॥ 11॥

इसलिये माताजी ! अब तुम भी अत्यन्त भक्तिभावसे उन श्रीहरिकी ही चरण-शरणमें जाओ; समस्त प्राणियोंका हृदय-कमल ही उनका मन्दिर है और तुमने भी मुझसे उनका प्रभाव सुन ही लिया है ।

आद्यः(स्) स्थिरचराणां(यँ) यो, वेदगर्भः(स्) सहर्षिभिः ।
योगेश्वरैः(ख्) कुमाराद्यैः(स्), सिद्धैर्योगप्रवर्तकैः ॥ 12॥

भेददृष्ट्याभिमानेन, निःसङ्गेनापि कर्मणा ।
कर्तृत्वात्सगुणं(म्) ब्रह्म, पुरुषं(म्) पुरुषर्षभम् ॥ 13॥

स सं(म्)सृत्य पुनः(ख्) काले, कालेनेश्वरमूर्तिना ।
जाते गुणव्यतिकरे, यथापूर्वं(म्) प्रजायते ॥ 14॥

वेदगर्भ ब्रह्माजी भी—जो समस्त स्थावर- जङ्गम प्राणियोंके आदिकारण हैं—मरीचि आदि ऋषियों, योगेश्वरों, सनकादिकों तथा योगप्रवर्तक सिद्धोंके सहित निष्काम कर्मके द्वारा आदिपुरुष पुरुष श्रेष्ठ सगुण ब्रह्मको प्राप्त होकर भी भेददृष्टि और कर्तृत्वाभिमानके कारण भगवदिच्छा- से, जब सर्गकाल उपस्थित होता है तब कालरूप ईश्वरको प्रेरणासे गुणोंमें क्षोभ होनेपर फिर पूर्ववत् प्रकट हो जाते हैं ।

ऐश्वर्यं(म्) पारमेष्ठ्यं(ञ्) च, तेऽपि धर्मविनिर्मितम् ।
निषेव्य पुनरायान्ति, गुणव्यतिकरे सति ॥ 15॥

इसी प्रकार पूर्वोक्त ऋषिगण भी अपने-अपने कर्मानुसार ब्रह्मलोक के ऐश्वर्यको भोगकर भगवदिच्छासे गुणोंमें क्षोभ होनेपर पुनः इस लोकमें आ जाते हैं ।

ये त्विहासक्तमनसः(ख्), कर्मसु श्रद्धयान्विताः ।

कुर्वन्त्यप्रतिषिद्धानि, नित्यान्यपि च कृत्स्नशः ॥ 16॥

जिनका चित्त इस लोकमें आसक्त है और जो कर्मोमें श्रद्धा रखते हैं, वे वेदमें कहे हुए काम्य और नित्य कर्मोंका साङ्गोपाङ्ग अनुष्ठान करनेमें ही लगे रहते हैं ।

रजसा कुण्ठमनसः(ख), कामात्मानोऽजितेन्द्रियाः ।

पितॄन् यजन्त्यनुदिनं(ङ्), गृहेष्वभिरताशयाः ॥ 17॥

उनकी बुद्धि रजोगुणकी अधिकताके कारण कुण्ठित रहती है, हृदयमें कामनाओंका जाल फैला रहता है और इन्द्रियाँ उनके वशमें नहीं होती; बस, अपने घरोंमें ही आसक्त होकर वे नित्यप्रति पितरोंकी पूजामें लगे रहते हैं।

त्रैवर्गिकास्ते पुरुषा, विमुखा हरिमेधसः ।

कथायां कथनीयोरु-विक्रमस्य मधुद्विषः ॥ 18॥

ये लोग अर्थ, धर्म और कामके ही परायण होते हैं; इसलिये जिनके महान् पराक्रम अत्यन्त कीर्तनीय हैं, उन भवभयहारी श्रीमधुसूदन भगवान्‌की कथा-वार्ताओंसे तो ये विमुख ही रहते हैं ।

नूनं(न्) दैवेन विहता, ये चाच्युतकथासुधाम् ।

हित्वा शृण्वन्त्यसद्गाथाः(फ्), पुरीषमिव विड्भुजः ॥ 19॥

हाय ! विष्ठाभोजी कूकर-सूकर आदि जीवोंके विष्ठा चाहनेके समान जो मनुष्य भगवत्कथामृतको छोड़कर निन्दित विषय- वार्ताओंको सुनते हैं—वे तो अवश्य ही विधाताके मारे हुए हैं, उनका बड़ा ही मन्द भाग्य है ।

दक्षिणेन पथार्यम्णः(फ्), पितृलोकं(वँ) व्रजन्ति ते ।

प्रजामनु प्रजायन्ते, श्मशानान्तक्रियाकृतः ॥ 20॥

गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टितक सब संस्कारोंको विधिपूर्वक करनेवाले ये सकामकर्मी सूर्यसे दक्षिण ओरके पितृयान या धूममार्गसे पित्रीश्वर के अर्यमा लोकमें जाते हैं और फिर अपनी सन्ततिके वंशमें उत्पन्न होते हैं ।

ततस्ते क्षीणसुकृताः(फ्), पुनर्लोकमिमं(म्) सति ।

पतन्ति विवशा देवैः(स्), सद्यो विभ्रं(म्)शितोदयाः ॥ 21॥

माताजी ! पितृलोकके भोग भोग लेनेपर जब उनके पुण्य क्षीण हो जाते हैं, तब देवतालोग उन्हें वहाँके ऐश्वर्यसे च्युत कर देते हैं और फिर उन्हें विवश होकर तुरन्त ही इस लोकमें गिरना पड़ता है ।

तस्मात्त्वं(म्) सर्वभावेन, भजस्व परमेष्ठिनम् ।

तद्गुणाश्रयया भक्त्या, भजनीयपदाम्बुजम् ॥ 22॥

इसलिये माताजी! जिनके चरण-कमल सदा भजनेयोग्य हैं, उन भगवान्‌का तुम उन्हींके गुणोंका आश्रय लेनेवाली भक्तिके द्वारा सब प्रकारसे (मन, वाणी और शरीरसे) भजन करो ।

वासुदेवे भगवति, भक्तियोगः(फ्) प्रयोजितः ।

जनयत्याशु वैराग्यं(ञ्), ज्ञानं(यँ) यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ 23॥

भगवान् वासुदेवके प्रति किया हुआ भक्तियोग तुरंत ही संसारमे वैराग्य और ब्रह्मसाक्षात्काररूप ज्ञानकी प्राप्ति करा देता है ।

यदास्य चित्तमर्थेषु, समेष्विन्द्रियवृत्तिभिः ।

न विगृह्णाति वैषम्यं(म्), प्रियमप्रियमित्युत ॥ 24॥

स तदैवात्मनाऽऽत्मानं(न्), निः(स्)सङ्गं(म्) समदर्शनम् ।

हेयोपादेयरहित-मारूढं(म्) पदमीक्षते ॥ 25॥

वस्तुतः सभी विषय भगवद् रूप होनेके कारण समान हैं। अतः जब इन्द्रियोंकी वृत्तियोंके द्वारा भी भगवद्भक्तका चित्त उनमें प्रिय-अप्रियरूप विषमताका अनुभव नहीं करता—सर्वत्र भगवान्‌का ही दर्शन करता है—उसी समय वह सङ्गरहित, सब समानरूपसे स्थित, त्याग और ग्रहण करनेयोग्य, दोष और गुणोंसे रहित, अपनी महिमामें आरूढ़ अपने आत्माका ब्रह्मरूपसे साक्षात्कार करता है ।

ज्ञानमात्रं(म्) परं(म्) ब्रह्म, परमात्मेश्वरः(फ्) पुमान् ।

दृश्यादिभिः(फ्) पृथग्भावैर्- भगवानेक ईयते ॥ 26॥

वही ज्ञानस्वरूप है, वही परब्रह्म है, यही परमात्मा है, वही ईश्वर है, वही पुरुष है; यहाँ एक भगवान् स्वयं जीव शरीर विषय, इन्द्रियों आदि अनेक रूपाने प्रतीत होता है ।

एतावानेव योगेन, समग्रेणेह योगिनः ।

युज्यतेऽभिमतो ह्यर्थो, यदसङ्गस्तु कृत्स्नशः ॥ 27॥

सम्पूर्ण संसारमे आसक्तिका अभाव हो जाना—बस, यही योगियोंके सब प्रकारके योग साधनका एकमात्र अभीष्ट फल है ।

ज्ञानमेकं(म्) पराचीनै-रिन्द्रियैर्ब्रह्म निर्गुणम् ।

अवभात्यर्थरूपेण, भ्रान्त्या शब्दादिधर्मिणा ॥ 28॥

ब्रह्म एक है, ज्ञानस्वरूप और निर्गुण है, तो भी यह बाह्य-वृतियोंवाली इन्द्रियोंके द्वारा भ्रान्तिवश शब्दादि धर्मोंवाले विभिन्न पदार्थोंके रूपमें भास रहा है ।

यथा महानहं(म्) रूप-स्तिवृत्पञ्चविधः(स्) स्वराट् ।

एकादशविधस्तस्य, वपुरण्डं(ञ्) जगद्यतः ॥ 29॥

जिस प्रकार एक ही परब्रह्म महत्त्व, वैकारिक, राजस और तामस-तीन प्रकारका अहङ्कार, पञ्चमहाभूत एवं ग्यारह इन्द्रियरूप बन गया और फिर वही स्वयंप्रकाश इनके संयोगसे जीव कहलाया, उसी प्रकार उस जीवका शरीररूप यह ब्रह्माण्ड भी वस्तुतः ब्रह्म ही है, क्योंकि ब्रह्मसे ही इसको उत्पत्ति हुई है ।

एतद्वै श्रद्धया भक्त्या, योगाभ्यासेन नित्यशः ।

समाहितात्मा निःसङ्गो, विरक्त्या परिपश्यति ॥ 30॥

किन्तु इसे ब्रह्मरूप वही देख सकता है, जो श्रद्धा, भक्ति और वैराग्य तथा निरन्तरके योगाभ्यास के द्वारा एकाग्र चित्त और असङ्ग-बुद्धि हो गया है ।

इत्येतत्कथितं(ङ्) गुर्वि, ज्ञानं(न्) तद्ब्रह्मदर्शनम् ।

येनानुबुद्ध्यते तत्त्वं(म्), प्रकृतेः(फ्) पुरुषस्य च ॥ 31॥

पूजनीय माताजी! मैंने तुम्हें यह ब्रह्मसाक्षात्कारका साधनरूप ज्ञान सुनाया, इसके द्वारा प्रकृति और पुरुषकेयथार्थस्वरूपका बोध हो जाता है ।

ज्ञानयोगश्च मन्निष्ठो, नैर्गुण्यो भक्तिलक्षणः ।

द्वयोरप्येक एवार्थो, भगवच्छब्दलक्षणः ॥ 32॥

देवि ! निर्गुणब्रह्म-विषयक ज्ञानयोग और मेरे प्रति किया हुआ भक्तियोग- इन दोनोंका फल एक ही है। उसे ही भगवान् कहते हैं ।

यथेन्द्रियैः(फ्) पृथग्द्वारै- रर्थो बहुगुणाश्रयः ।

एको नानेयते तद्वद्- भगवान् शास्त्रवर्त्मभिः ॥ 33॥

जिस प्रकार रूप रस एवं गन्ध आदि अनेक गुणोंका आश्रयभूत एक ही पदार्थ भिन्न-भिन्न इन्द्रियोंद्वारा विभिन्नरूपसे अनुभूत होता है, वैसे ही शास्त्र के विभिन्न मार्गोंद्वारा एक ही भगवान्की अनेक प्रकारसे अनुभूति होती है ।

क्रियया क्रतुभिर्दानैस्- तपः(स्)स्वाध्यायमर्शनैः ।

आत्मेन्द्रियजयेनापि, सं(न्)न्यासेन च कर्मणाम् ॥ 34॥

योगेन विविधाङ्गेन, भक्तियोगेन चैव हि ।

धर्मेणोभयचिह्नेन, यः(फ्) प्रवृत्तिनिवृत्तिमान् ॥ 35॥

आत्मतत्त्वावबोधेन, वैराग्येण दृढेन च ।

ईयते भगवानेभिः(स्), सगुणो निर्गुणः(स्) स्वदृक् ॥ 36॥

नाना प्रकारके कर्मकलाप, यज्ञ, दान,तप, वेदाध्ययन, वेदविचार (मीमांसा), मन और इन्द्रियोंके संयम, कर्मोंके त्याग, विविध अङ्गोंवाले योग, भक्तियोग, निवृत्ति और प्रवृत्तिरूप सकाम और निष्काम दोनों प्रकारके धर्म, आत्मतत्त्वके ज्ञान और दृढ़ वैराग्य- इन सभी साधनोंसे सगुण-निर्गुणरूप स्वयंप्रकाश भगवान्को ही प्राप्त किया जाता है ।

प्रावोचं(म्) भक्तियोगस्य, स्वरूपं(न्) ते चतुर्विधम् ।

कालस्य चाव्यक्तगतेर्- योऽन्तर्धावति जन्तुषु ॥ 37॥

माताजी! सात्त्विक, राजस, तामस और निर्गुण-भेदसे चार प्रकारके भक्तियोगका और जो प्राणियों के जन्मादि विकारोंका हेतु है तथा जिसकी गति जानी नहीं जाती, उस कालका स्वरूप मैं तुमसे कह ही चुका हूँ ।

जीवस्य सं(म्)सृतीर्बह्वी-रविद्याकर्मनिर्मिताः ।

यास्वङ्ग प्रविशन्नात्मा, न वेद गतिमात्मनः ॥ 38॥

देवि ! अविद्याजनित कर्मके कारण जीवकी अनेकों गतियाँ होती हैं; उनमें जानेपर वह अपने स्वरूपको नहीं पहचान सकता ।

नैतत्खलायोपदिशेन्- नाविनीताय कर्हिचित् ।

न स्तब्धाय न भिन्नाय, नैव धर्मध्वजाय च ॥ 39॥

मैंने तुम्हें जो ज्ञानोपदेश दिया है— उसे दुष्ट, दुर्विनीत, घमंडी, दुराचारी और धर्मध्वजी (दम्भी) पुरुषोको नहीं सुनाना चाहिये ।

न लोलुपायोपदिशेन्-नगृहारूढचेतसे ।

नाभक्ताय च मे जातु, न मद्द्विक्तद्विषामपि ॥ 40॥

जो विषयलोलुप हो, गृहासक्त हो, मेरा भक्त न हो अथवा मेरे भक्तोंसे द्वेष करनेवाला हो, उसे भी इसका उपदेश कभी न करे ।

श्रद्दधानाय भक्ताय, विनीतायानसूयवे ।

भूतेषु कृतमैत्राय, शुश्रूषाभिरताय च ॥ 41॥

बहिर्जातविरागाय, शान्तचित्ताय दीयताम् ।

निर्मत्सराय शुचये, यस्याहं(म्) प्रेयसां(म्) प्रियः ॥ 42॥

जो अत्यन्त श्रद्धालु, भक्त, विनयी, दूसरोंके प्रति दोषदृष्टि न रखनेवाला, सब प्राणियोंसे मित्रता रखनेवाला, गुरुसेवामें तत्पर बाह्य विषयोंमें अनासक्त, शान्तचित्त, मत्सरशून्य और पवित्रचित्त हो तथा मुझे परम प्रियतम माननेवाला हो, उसे इसका अवश्य उपदेश करे ।

य इदं(म्) शृणुयादम्ब, श्रद्धया पुरुषः(स्) सकृत् ।

यो वाभिधत्ते मच्चित्तः(स्), स ह्येति पदवीं(ञ्) च मे ॥ 43॥

मा! जो पुरुष मुझमें चित्त लगाकर इसका श्रद्धापूर्वक एक बार भी श्रवण या कथन करेगा, वह मेरे परमपदको प्राप्त होगा ।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)
तृतीयं स्कन्धेकापिलेये द्वात्रिं(म्)शोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥